ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 192-196
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

बुद्ध का आर्थिक और व्यवहारिक चिन्तन

सुनील कुमार चतुर्वेदी
असि0 प्रोफे0, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, रामानुज प्रताप पी0जी0 कालेज, डूमंडगंज, मिर्जापुर (उ0प्र0)भारत
Received- 03.12.2019, Revised- 07.12.2019, Accepted - 10.12.2019 E-mail: sunilchaturvedi2019@gmail-com

सारांश : *जातकों कथाओं के प्रति सर्व साधारण की यह धारणा रही है कि जातक बौद्ध धर्म से सम्बद्ध ग्रन्थ है। जिसके फलस्वरूप इसमें बुद्ध का दर्शन, चिन्तन तथा उनके आध्यात्मिक पक्ष की अभिव्यक्ति हुई है, जबकि इस प्रकार की धारणा महज एकांगी है, क्योंकि गौतम बुद्ध ने इसमे जीवन के सम्पूर्ण यथार्थ पक्षों को उजागर किया है। इन कथाओं में जहॉ लोक विश्वास परम्पराऐं, दैनन्दिन जीवन का यथार्थ उद्घाटित होता है, वहीं भौतिक जीवन के सत्य की गहराईयों का भी बोध होता है, क्योंकि एक ओर व्यक्ति मन की व्यापकता का अवलम्बन स्वीकारता है तो दूसरी ओर क्षुदाग्नि से चलायमान भी होता है। बुद्ध ने इन कथाओं में क्षुधा और मन के निरन्तर संघर्ष को एक साथ आबद्ध कर अपने चिन्तन को जातकों के माध्यम से प्रस्तुत कर यथार्थ की व्यवहारिकता को उद्घाटित किया है। अपने आर्थिक चिन्तन में उन्होंने ऐसे ऐश्वर्य लाभ और अर्थलाभ को धिक्कारा था, जो अधर्म के आचरण से प्राप्त किया जाता है, उन्होने कठिन परिश्रम के साथ गृहस्थों को कर्मठी बनने की शिक्षा दी, जिसमें आलस्य का कोई स्थान नहीं था। कृषि के सम्बन्ध में उनका व्यापक चिन्तन था, जिसमें उन्होंने कृषि भूमि के प्रकार, कृषि कर्म, फसलों के बचाव तथा कृषि उपज पर अपना चिन्तन जनमानस में प्रसारित किया। मानव जीवन में पशुपालन की उपादेयता भी उनके आर्थिक चिन्तन का हिस्सा रही। इनमें गाय और भेंड को उन्होंने मानव के लिए परम उपयोगी माना जो सीधी अर्थात अहिंसक होने के साथ ही घड़े भर दूध देने वाली होती है। उद्योगों के विषय में उन्होंने वस्त्रोंद्योग एवं औषधि आदि से सम्बद्ध विषयों पर लोगों को विशेष जागृत किया। मानव जीवन में रोगों से मुक्ति के लिए वैद्य द्वारा औषधि के माध्यम से स्वास्थ्य लाभ के वे हिमायती थे तथा वस्त्रोद्योग में काशी के वस्त्रों की उन्होंने भूरि–भूरि प्रसंशा की थी। बुद्ध अपने व्यवहारिक चिन्तन में जहॉ धनसंचय, कृपणता, चित्त की चपलता, हिंसा, अकृतज्ञता, मिथ्याभाषण आदि प्रवृत्तियों को हतोत्साहित करते है, वहीं दूसरी ओर धर्मपूर्वक धनार्जन, दान देना, दूसरों की सहायता करना, सदाचार, पापाचार से मुक्ति, मैत्रिधर्म पालन, दृढ़ श्रद्धा, उच्च कर्मभाव, कुटुम्ब और समाज में मधुर वातावरण को बनाये रखना आदि प्रवृत्तियों पर किये गये चिन्तन को इन कथाओं के माध्यम से बल प्रदान करते है। गौतम ने जिस आर्थिक और व्यवहारिक जीवन का अवलोकन किया वह विशुद्ध सरल और सुरूचिपूर्ण था, जो किसी व्यक्ति या समाज को धार्मिक तथा भौतिक उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में समर्थ था। अतएव बुद्ध का आर्थिक और व्यवहारिक चिन्तन' भी उनके धार्मिक एवं दार्शनिक चिन्तनों के साथ तत्कालीन समाज में लोकप्रिय हुआ।*

कुंजी शब्द– दर्शन, चिन्तन, आध्यात्मिक, अभिव्यक्ति, परम्पराऐं, दैनन्दिन जीवन, क्षुदाग्नि, ऐश्वर्य लाभ, अर्थलाभ।

बुद्ध के व्यक्तित्व की परीक्षा करने पर यह बात स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है कि वे पूर्णतः बुद्धिवादी थे। इसका प्रधान कारण उस समय का कल्पना प्रधान वातावरण था। वे किसी भी तथ्य को विश्वास की कच्ची नींव पर रखना नहीं चाहते थे, प्रत्युत तर्क बुद्धि की कसौटी पर सब तत्वों को कसना उनकी दिशा का प्रधान उद्देश्य था। उन्होंने कलामों से उपदेश देते समय स्फूट शब्दों में कहा था, कि किसी तथ्य को इसलिए मत मानों की यह परम्परा से चला आ रहा है, अथवा यह प्राचीन काल में कहा गया था अथवा यह धर्म ग्रन्थ में कहा गया है अथवा इसका उपदेष्टा गुरु तापस है अथवा किसी बात के लिए इसका ग्रहण करना समुचित है। इन कारणों से किसी भी तथ्य को ग्रहण मत करो प्रत्युत इस कारण से ग्रहण करों कि वे धर्म कुशल (शुभप्रद) है तथा वे धर्म अनवद्य–अनिन्दनीय है तथा ग्रहण करने पर उनका फल सुखद तथा हितप्रद होगा।

भगवान बुद्ध की चिन्तन साधना, व्यक्तिगत आत्मपोषण के लिए नहीं थी, उनकी यह विचारधारा तो सम्पूर्ण जगत मानवता की कल्याण कामना के लिए मुखरित हुई थी। बुद्ध का चिन्तन किसी एक मात्र विषय तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि वह बहुमुखी था। उनके प्रभावशाली विचारों के चलते उस समय समाज में धर्म एवं अर्थ का एक ऐसा ताना बाना जुड़ गया था कि उसे किसी भी स्थिति में अलग नहीं किया जा सकता था। यद्यपि गौतम बुद्ध ने सांसारिक वैभव को उपेक्षणिय कहा है, परन्तु फिर भी सामाजिक सर्वोपरिता के लिए उन्होंने जनप्रिय मानदण्डों का निदर्शन किया। मानव समाज का चाहे किसी भी वर्ण, वर्ग और व्यवसाय से कोई सम्बद्ध क्यों न रहा हो, वह गौतम के विचारधारा के अनुरूप समुन्नत जीवन के पथ पर

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

चल सकता था। गौतम ने जिस व्यवहारिक जीवन का अवलोकन किया वह विशुद्ध सरल और सुरूचिपूर्ण था, जो किसी व्यक्ति या समाज को धार्मिक तथा भौतिक उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में समर्थ था। अतएव बुद्ध की धार्मिक परम्परा के साथ ही, आर्थिक चिन्तन एवं व्यवहारिक विचारधारा भी जनमानस में प्रचलित हुई।

मनुष्य को अपने जीवन में अनेक प्रकार के कर्तव्य और उत्तरदायित्वों को पुरा करने के लिए अर्थ की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु इस प्रकार की महती आवश्यकता के लिए अर्थोपार्जन को निर्देशित करते हुए बुद्ध ने कहा कि ''उस ऐश्वर्य लाभ तथा धनलाभ को धिक्कार है जो नरकगामी कर्म या अधर्माचरण से मिले। अधर्म से जीविका चलाने की अपेक्षा पात्र लेकर अनागारिक होकर जो भिक्षा–वृत्ति से जीविका चलाता है वही अच्छा है। बुद्ध ने सदैव कठिन परिश्रम से अर्जित सम्पदा के चतुर्दिक चिन्ता, शंका तथा त्रास की व्याप्ति देखी फिर भी वे गृहस्थों को कर्मण्य बनने की शिक्षा देते रहे। उन्होंने कहा– 'आलस्य के परिणाम अति गम्भीर है। आज का कार्य कल पर छोड़ने वाला व्यक्ति उपार्जन से विरत होता ही है, साथ ही वह अपने पूर्वजों से प्राप्त सम्पति को भी नष्ट करता है। आलस्य सम्पत्ति विनाश का द्वार है। सौ वर्षी आलसी तथा पराक्रमहीन जीवन की अपेक्षा एक दिन का दृढ़ कर्मण्यता का जीवन ही श्रयेष्कार है।' एक अन्य स्थल पर अपनी विचारधारा व्यक्त करते हुए गौतम ने कहा कि– ''उस सम्पत्ति को धिक्कार है, उस धन को धिक्कार है, जो पापपूर्ण जीविका या अधर्माचारण से प्राप्त हो।''

इस प्रकार व्यक्त किये गये उद्गारों से परिलक्षित होता है कि, गौतम सदैव ही धर्माचरण तथा कर्मण्यता द्वारा अर्जित धन पर चिन्तन किया करते थे, तथा धर्मपूर्वक संग्रहित किये जाने वाले अर्थ के हिमायती थे।

अकर्मण्ता को तिलांजलि देते हुए बुद्ध कहते हैं, कि धर्म पूर्वक माता–पिता का भरण–पोषण करो, व्यवसाय और वाणिज्य करों। इस प्रकार गृहस्थों को आलस्य और प्रमाद का त्याग कर अपना धर्म पालन करना चाहिए। गौतम द्वारा व्यक्त किये गये, इन उद्गारों से भासित होता है, कि वे विधिपूर्वक धर्माचरण को ध्यान में रखते हुए ही, मनुष्य को कर्मण्यता का अवलम्बन प्रदान कर अर्थोपार्जन का पथिक बनाना चाहते थे।

खाद्यान्य मानव जीवन की सर्वप्रमुख आवश्यकता होती है, जिसकी उपलब्धता कृषिकर्म पर ही आधारित रहा करती है। कृषि की उन्नति के लिए भूमि का उर्वरक होना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। इस प्रकार उपयुक्त भूमि के विषय में एक ग्रामणी से गौतम कहते है कि– ''ग्रामणी! किसी गृहस्थ के तीन खेत हो। एक बड़ा अच्छा, दूसरा माध्यम और तीसरा बहुत हीन जंगल उसर। ग्रामणी! तो क्या समझते हो कि वह कृषक किस खेत में बीज बोयेगा ?'' ''भन्ते! वह कृषक गृहस्थ सर्वप्रथम पहले खेत में बीज बोयेगा। सो क्यों ? यदि वहॉ कुछ भी न हो तो गाय–बैल की सानी तो निकल आयेगी न।'' अतः बुद्ध के आर्थिक चिन्तन में कृषि की उपादेयता के लिए उर्वरक भूमि का होना सन्निहित था।

विनयपिटक से ज्ञात होता है कि– भगवान मगध के खेतों को मेड़ बँधा, कतार बँधा और चौमेड़ बँधा देखा। देखकर आयुष्मान आनन्द को सम्बोधित किया– ''आनन्द! देख रहा है तू मगध के खेतों को मेड़ बँधा, मार्यादा बँधा और चौमेड़ा बँधा?''

इस प्रकार बुद्ध द्वारा आनन्द को सम्बोधित किया जाना स्पष्ट करता है कि बुद्ध की यह मान्यता रही होगी, कि कृषि कर्म के लिए खेतों को पहले सुदृढ़ किया जाये।

कृषक गृहपतियों के खेतों की तैयारी से सम्बद्ध कर्मो का विवेचन करते हुए बुद्ध कहते है कि–

''भिक्षुओं! कृषक गृहस्थ शीघ्र से शीघ्र खेत में हल जोतकर मिट्टी ठीक करता है, शीघ्र से शीघ्र खेत में हल जोतकर उसकी मिट्टी ठीक करके बीज को बोता है तथा बीजों को बोकर शीघ्र जल भी देता है, तथा समय पर बन्द भी करता है। भिक्षुओं ये तीन कृषक गृहस्थ के अनिवार्य कर्तव्य है।'' फलतः विदित होता हे कि खेतों की जुताई, बोवाई और सिंचाई को तथागत द्वारा कृषिकार्य के लिए कृषक के अनिवार्य कर्म बताये गये है, जिन पर कृषि के अच्छे उपज की अट्टालिका खड़ी होती है। जिससे समाज की आर्थिक उन्नति सम्भव है।

कृषि से सम्बद्ध एक अन्य प्रसंग में अपनी धारणा व्यक्त करते हुए गौतम भिक्षुओं से कहते है कि–

''भिक्षुओं! चाहे धान की बालि हो या जौ कि, वह ठीक से न रखी गयी हो तथा उस पर यदि हाथ या पॉव पड़ जाय तो इसकी सम्भावना है कि उससे हाथ या पाँव बिंध जायेगा और उनमें से रक्त निकल आयेगा। इस प्रकार के उल्लेखों से भासित होता है कि बुद्ध सदैव कृषकों को इन फसलों के रख–रखाव के प्रति सावधानी बरतने के लिए अगाह भी किया करते थे।

बुद्ध ने फसलों में लगने वाले रोगों को भी कभी अनदेखा नहीं किया। वे इन रोगों से होने वाली कृषि की हानि के विषय में अपने शिष्यों के मध्य अपनी विचारधारा को व्यक्त कर कृषकों को संकेत देते रहे। एक स्थान पर वे कहते है कि–

''आनन्द! जैसे किसी लहलहाते धान के खेत को

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

सफेदा नामक रोग लग जाता है, तो वह धान का खेत चिरस्थायी नहीं होता ..... आनन्द! जैसे किसी लहलहाते ईख के खेत को लाल रोग लग जाता है तो वह ईख का खेत चिरस्थायी नहीं होता।'' इस प्रकार हम कह सकते है कि फसलों में लगने वाले रोगों के प्रति भी बुद्ध ने अपने हित चिन्तक बचनों से समाज का अवलोकन करवाया, जिससे की फसलों के तबाह होने के पूर्व ही इन रोगों से उत्पन्न संकट की रोकथाम की जा सके और समाज खाद्यान्न की कमी के चलते आर्थिक पंगु न बनने पाये।

बुद्ध ने तत्कालीन समाज के अर्थोपार्जन के एक घटक के रूप में पशुपालन की महता पर भी अपनी विचारध ाारा प्रस्तुत की। उन्होंने इनसे प्राप्त होने वाली आजीविका को सदैव अपनी अन्तर दृष्टि से स्थान दिया। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि– 'जैसे माता–पिता, भ्राता और दूसरे बन्धु–बान्धव है, वैसे ही ये गायें हमारे लिए परम मित्र है। वे न पैर से मारती है, और सींग से, वे भेंड़ की भाँति सीधी व प्यारी है तथा घड़े भर दूध देती है।'' इस प्रकार बुद्ध का यह विचार जहॉ गायों की उपयोगिता को प्रदर्शित करता है वहीं भेड़ों की शालीनता को भी उजागर करता है जिससे भेड़ो की अहिंसा वृत्ति का आभास होता है।

वस्त्रोंद्योग पर अंगुत्तर निकाय में बुद्ध स्वयं कहते है कि– ''भिक्षुओं! जब मैं सुकुमार था, तो मेरी पगड़ी, निवसन, उत्तरासंग काशी के होते थे। काशी के वस्त्रों के प्रति बुद्ध की यह विचारधारा उद्योग द्वारा अर्थोपार्जन की धारणा को व्यक्त करती है तथा तत्कालीन युग में काशी के उत्तम कोटि के वस्त्रों के प्रति जनाकर्षक धारणा को पुष्ट करती है।

युक्तिवादी होने के अतिरिक्त बुद्ध नितान्त व्यवहारिक थे। केवल शुष्क तर्क के द्वारा दुरूह तत्वों की व्याख्या करना उनका उद्देश्य नहीं था। आध्यात्मिकता की बाढ़ उनके युग में बहुत ही अधिक थी। इन मतों के अनुयायी तथ्यों के विषय में नाना प्रकार की उटपटांग युक्तियों का प्रदर्शन कर अपने कर्तव्यों की इति श्री समझ बैठे थे, परन्तु बुद्ध के लिए यह आचरण नितान्त अनुचित था। जिस प्रकार वैद्य रोगी को आवश्यकता के अनुसार निदान और औषध बतला देता है, उसी प्रकार भवरोग के रोगी प्राणियों के लिए बुद्ध ने आवश्यक वस्तुएँ बतला दी थी। अनावश्यक वस्तु के विषय में बारम्बार प्रश्न किये जाने पर भी वे सर्वथा मौन हो जाते थे।

मानव समाज की व्यवहारिक धारणा बुद्ध के चिन्तन से परे न थी। समाज की प्रत्येक विधाओं का उन्होंने परिशीलन किया और अपनी मंशा को मानव जगत में विखेरा इस प्रकार बुद्ध की इस शीर्षस्थ विचारधारा को समाज में सिरोधार्य किया गया।

गृहस्थ जीवन की व्यवहारिकता के प्रति बुद्ध ने अपनी धारणा प्रस्तुत करते हुए कहा कि– बन्धु बान्धवों के प्रति उपयोगी बनना, उनसे निष्कपट व्यवहार रखना, समान भाव से व्यवहार करना, सेवकों को यथोचित वेतन देना रोगी होने पर सेवा–शुश्रुषा करना आदि कुटुम्ब और समाज में मधुर वातावरण की सृष्टि करने के लिए है।

एक अन्य स्थान पर गौतम कहते है कि– मनुष्य को किसी की वस्तु का अपहरण नहीं करना चाहिए और न कभी झुठ बोलना चाहिए। यश पाने पर प्रमाद नहीं करना चाहिए, धार्मिक विधि से धन प्राप्त करना चाहिए, धोखा–धड़ी से नही। भोग विलास की सामग्री पाने पर प्रमाद नहीं करना चाहिए। मनुष्य का चित्त स्थिर होना चाहिए। उसकी श्रद्धा दृढ़ होनी चाहिए। वह स्वादिष्ट वस्तुओं को कभी अकेले न खाये। प्रत्यक्ष या परोक्ष होने पर कभी सज्जनों की निन्दा नहीं करनी चाहिए। जैसा कहे वैसा ही करना चाहिए। इस प्रकार उच्च मानवीय गुणों से ओत–प्रोत बुद्ध की यह चिन्तना सदैव जगत कल्याण के कामना की प्रेरक–स्रोत थी। वे हमेशा ही मानव–मानव के मन के अन्तर्द्वन्द्वों को भूलाने के पोषक थे, जिससे समाज में विद्यमान संकीर्णता का क्षय हो सकें।

गौतम ने व्यवहारिक जीवन में, कल्याण कामना की मिथ्यावधारणावश होने वाली हिंसा का कभी समर्थन नहीं किया, बल्कि इस प्रकार की जीवहिंसा का उन्होंने पुरजोर विरोध किया। वे कहते है कि– 'यज्ञ में हिंसा करने वाले आर्य नहीं है। जो पुरुष किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता वहीं आर्य है।

गौतम ने धनार्जन से अधिक दान देने पर जोर दिया। उन्होंने माणवक से कहा कि– 'माणवक! जो धर्म से धन लाभ कर, धर्म से धन प्राप्त कर, एक को भी देता है, दो को भी देता है ..... सौ को भी देता है, बहुतों को भी देता है, वह बहुत पुण्य कमाता है। इस प्रकार परिलक्षित होता है कि गौतम धर्म से ही धन संग्रह को महत्ता देते हुए लोगों को व्यवहारिक जीवन में दान कर्म करने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे।

बुद्ध ने समाज में सर्वसाधारण को अभिष्ट सदाचार पथ पर प्रगतिशील करने का सदैव प्रयास किया। सदाचार के प्रति उनकी मान्यता थी कि– सदाचार से इहलौकिक और परलौकिक अभ्युदय सम्भव है। सदाचार से सम्पत्ति की वृद्धि होती है, कीर्ति बढ़ती है और प्रत्येक सभा में प्रभाव पड़ता है। सदाचारी की मृत्यु भी शान्ति से होती है तथा मरणोत्तर काल में उसकी सुगति होती है। जो पुरुष सदाचारी भिक्षु को देख अगर हाथ जोड़ प्रणाम करता

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

है, उसकी इस जन्म में प्रसंशा होती है तथा मरने पर स्वर्गलाभ। निश्चय से जो बहुश्रुत है जो बहुत बातों का विचार कर सकते है, तथा जो प्रज्ञावन है उसकी सेवा करनी चाहिए।

बुद्ध ने लोगों को व्यवहारिक जीवन में पापाचार से भी मुक्ति दिलाने का यथा सम्भव प्रयास किया, अपने इस प्रयास में उन्होंने अपनी विविध धारणा व्यक्त की, परन्तु इस प्रकार की समाज में व्याप्त कुरीति को दूर करने में, सबसे बड़ी बाधा यह थी कि पापामयी प्रवृत्ति के लोग संसार में प्रत्यक्ष ही फलते–फूलते और सम्पन्न दिखाई देते है। इस तरह की परिस्थिति का अवलोकन करते हुए गौतम ने बताया कि– जब तक पाप फल नहीं देता, तब तक मूर्ख उसे मधु की भॉति मधुर मानता है, परन्तु जब पाप फल देने लगता है, तब उससे दुःख होता है। पाप ताजे दूध की भॉति शीघ्र ही विचार नहीं लाता, वरन भस्म से ढ़की हुई आग की भॉति जलता हुआ वह पापी का दूर तक पीछा करता है। पापी की संगति करने वाले को निरन्तर सुख कभी नहीं मिलता, ऐसा करने वाला अपना विनाश करता है।

मनुष्य अपने शरीर, वाणी तथा मन से जो कर्म करता है, उसका फल पाता हुआ उन्ही कर्मो को अपने में देखता है। शुभ कर्म करने वाला शुभ फल पाता है, पाप कर्म करने वाला बुरा अनिष्टकर फल पाता है। जगत में जो जैसा बीज बोता है वैसा ही फल पाता है। बीज के अनुसार बीज के अनुकूल ही फल ले जाता है, ग्रहण करता है, भोगता है, भोगता है। इस प्रकार के उल्लेखों से विदित होता है कि गौतम ने सदैव ही इस पापाचारिता से लेागों को सजग करने का प्रयास किया। एक बार पाप कर्म करने पर मनुष्य को ऐसा कदापि नहीं समझना चाहिए, कि मैं सदैव के लिए पापी हो गया हूँ, बल्कि यह निश्चय करना चाहिए कि पुनः पाप कर्म नहीं करूँगा। शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक दुश्चरितों का परित्याग करके सदाचारी बनना चाहिए।

गौतम ने निर्वाण मार्गगामी होने के लिए भी विचार धारणा व्यक्त की है, जिसमें पुरुष अपनी कौटुम्बिक संश्लिष्टता के सदस्यों से निर्वाण पथिक होने की अनुमति लेता है। इस महामार्ग के यात्री के विषय में गौतम कहते है कि– कठिनाई से निग्रह किये जा सकने वाले, शीघ्रगामी जहॉ चाहें वहॉ चले जाने वाले चित का दमन करना अच्छा है, दमन किया गया चित्त सुख देने वाला होता है। बुद्धिमान मनुष्य दुष्करता से दिखाई देने वाले चित्त की रक्षा करें। सम्भालकर रखा गया चित्त सुख देने वाला होता है। जो चित्त का संयम करेंगे, वे ही मार से बन्धन से मुक्त होंगे। जिसका कर्मस्थान स्थिर है, जिसका चित्त आसक्ति रहित है, जिसका चित्त स्थिर है, जो पाप–पुण्य से परे है, उस जागरूक पुरुष के लिए भय नहीं। चित्त चंचल है, चपल है, दूर–रक्ष्य है, दूर–निवार्य है। मेधावी पुरुष इसे उसी प्रकार सीधा करता है, जैसे बाण बनाने वाला बाण को। इस प्रकार सीधा करते हुए अपने चित्त की रक्षा करें।

उपर्युक्त व्याख्याओं के आधार स्वरूप हम डा0 रामजी उपाध्याय महोदय के इस निष्कर्ष से सहमत है– ''गौतम के अनुसार व्यक्तित्व के विकास करने के लिए मानव को अपने से बाहर किसी उपादान को यही ढूँढना है। किसी बाह्य वस्तु की सहायता से वास्तविक लाभ की सम्भावना नहीं हो सकती। उन्होनें बतलाया कि ज्ञान के प्रकाश में अपनी चित्त–वृत्तियों को इस प्रकार सुसंस्कृत कर लेना है कि साधारण लोगों की भॉति इहलौकिक अथवा अधिभौतिक सिद्धियों और सांसारिक भोग विलासों के पाश में न बंधना पड़े। ये ही दुःख के कारण बनते है। गौतम का यह आयोजन सर्वथा तर्कपूर्ण था।'

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन मीमांसा, (पंचम परिच्छेद), काशी, सं0 2011, पृ0 45।
2. लोमकस्सप जातक, (4/443), अनु0 भदन्त आनन्द कौशल्यायन हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग 1995, पृ0 176।
3. मकादुक्खंध सुत्त, 3–4, सुत्तनिपात, 2.4.14।
4. छवक जातक, (3/309) पृ0 199।
5. धम्मपद, सहस्सवग्गो।
6. संयुक्त निकाय, भाग–2, देसनासुत्त।
7. विनयपिटक, 8.4.2, अनु0 राहुल सांकृत्यायन, सम्पादित, डॉ0 परमानन्द सिंह, पृ0 279।
8. अंगुत्तर निकाय भाग–1, अनु0 भ0आ0कौ0, प्रका0 महाबोधि सभा, कलकत्ता–1963, पृ0 247।
9. अंगुत्तर निकाय भाग–1, पृ0–7।
10. पूर्वोक्त भाग–3, पृ0 349।
11. सुत्तनिपात, ब्राह्मणधम्मिक सुत्त।
12. अंगुत्तर निकाय, भाग–1, पृ0 148।
13. आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ0 46।
14. सुत्तनिपात, धम्मिक सुत्त।
15. कक्कारू जातक, (3/326), पृ0 254–55।
16. सुत्तनिपात, वसलसुत्त।
17. सीलवीमंस जातक, (3/362), पृ0 356–57।
18. सुत्तनिपात, मेत्तसुत्त।
19. जवसकुण जातक, (3/308), पृ0 196।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

20. धम्मपद, धम्मट्ठवग्गों ।
21. आचार्य बलदेव उपाध्याय, पूर्वोक्त पृ0 45।
22. सुत्तनिपात, माधसुत्त, पृ0 99।
23. महापरिनिब्बान सुत्त, महावग्ग–6.28.4।
24. धजविहेठ जातक, (3/391), पृ0 156।
25. धम्मपद, बालवग्गो–पापवग्गो।
26. गोध जातक, (2/141), पृ0 119।
27. चुल्लनन्दिय जातक, (2/222) पृ0 417–18।
28. धम्मपद, कोधवग्गो।
29. तेलपत्त जातक (1/96), पृ0 538–40
30. रामजी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, प्रका0 लोकभारती देव भारती प्रकाशन इलाहाबाद–1966, पृ0 465।

*****